

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

युगांतरीयचेतना-लीला संदोह प्रकरण

उमाशंकरसंवादामरां श्रुत्वा कथां तु यः ।

निवृत्तो जन्ममृत्युभ्यां शुककायानिवासकः ॥ १ ॥

वैशम्पायन एकस्मिन् दिनेऽगान्मेरुपर्वते ।

महालयैकशेषं तं मार्कण्डेयं सभाजितुम् ॥ २ ॥

हर्षान्वितावुभौ नत्वाऽन्योन्यं तावृषिसत्तमौ ।

चर्चायां परमार्थायां मार्कण्डेयं स पृष्ठवान् ॥ ३ ॥

टीका—शिव-पार्वती संवाद की अमर कथा सुनकर जरा-मृत्यु से निवृत्त हुए शुककाया में निवास करने वाले महर्षि वैशम्पायन का एक बार सुमेरु पर्वत पर महाप्रलय में भी

एकमात्र जीवित रहने वाले देवात्मा मार्कण्डेय जी से समागम हुआ । दोनों ने हर्षाभिव्यक्ति की और नमन वंदन के उपरांत परमार्थ चर्चा करने लगे । वैशम्पायन ने मार्कण्डेय जी ने पूछा ॥ १-३ ॥

व्याख्या—महर्षि वैशम्पायन एवं देवात्मा मार्कण्डेय जी का एक दूसरे से मिलना व युगांतरीय चेतना के संदर्भ में समागम कर परस्पर जानकारी प्राप्त करना एक ऐसे तंत्र का द्योतक है जो युगों-युगों से ऋषिगणों के मध्य चलता चला आया है । इसी माध्यम से वे अदृश्य जगत की भूत, वर्तमान व भविष्य की गतिविधियों का पर्यवेक्षण, विश्लेषण एवं क्रियान्वयन हेतु निर्धारण करते आए हैं ।

महर्षि वैशम्पायन ने शुकयोनि में तत्त्वज्ञान सुना था। शिव-पार्वती की तत्त्वदर्शन चर्चा में आसपास कोई जीवधारी शेष न रहा था विधि का विधान ही कुछ ऐसा था कि शुकयोनि में बैठे महर्षि महाप्रज्ञा के उस तत्त्वज्ञान का श्रवण कर सके जिसने उन्हें अमर बना दिया। काया बदलती रहती है पर यह ब्रह्मज्ञान शाश्वत है।

उनसे चर्चा कर रहे देवात्मा मार्कण्डेय जी मूकंड ऋषि के पुत्र थे। वे भी चिरायु माने जाते हैं। जिस समय प्रलय ने सारे जगत को निगल लिया, उस समय भी वे बचे रहे, यह आख्यान यही स्पष्ट करता है कि देवात्माओं का महाप्रलय भी कुछ नहीं बिगाड़ पाती। अपने शील व परहित हेतु तपस्या के कारण ऋषि मार्कण्डेय भगवान शंकर से वरदान पाकर अजर, अमर हुए भूत-भविष्य और वर्तमान के सभी ज्ञानों के ज्ञाता बने तथा पुराणों का आचार्यत्व भी उन्हें प्राप्त हुआ।

प्रलय का अर्थ है महाविनाश-संहार। खंड प्रलय अनेकों कल्पों में होती रही है। यह भगवान की माया का ही वैभव है मनुष्य को सत्पथ पर लाने के लिए। ऐसी कठिन परिस्थितियों में भी देवात्मा पुरुष जीवित रहते हैं और संहार के बाद सृष्टि प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं। भगवान भी विनाश के बाद सृजन चाहते हैं अतः उनकी सहायता करते हैं।

ब्रह्माजी ने प्रलय के समय मानव बीजों की रक्षा की ताकि अपना प्रजापति वाला कर्तव्य तदुपरांत निभा सकें व सृष्टि बनी रहे। इसी प्रकार रावण का भगवान के हाथों संहार हुआ, परंतु देवपुरुष विभीषण जीवित रहे तथा वे भी चिरायु माने जाते हैं। महाभारत युद्ध एक विनाशलीला के रूप में संपन्न हुआ जिसमें अधिसंख्य लोग मारे गए, परंतु श्रीकृष्ण समर्पित धर्म परायण पांडवादि जीवित रहे। यह अनादिकाल से चला आ रहा सृष्टि का क्रम है।

वैशम्पायन उवाच

प्रज्ञायुगसमारंभे मंत्रणातिमहत्त्वगा ।

विष्णुनारदयोर्मध्ये जाता मङ्गलदा नृणाम् ॥ ४ ॥

योजना निश्चिता सैका नीतिर्निर्धारिताप्यभूत् ।

इत्येव ज्ञातं तत्राग्रे किमभूद् विदितं न हि ॥ ५ ॥

त्रिकालज्ञो भवांस्त्र संदर्भे विश्वमङ्गले ।

अद्यावधि ह्यभूत्किं च भाव्यग्रे कृपया वद ॥ ६ ॥

टीका—देव जब प्रज्ञायुग का शुभारंभ हो रहा था तब भगवान विष्णु देवर्षि नारद के बीच कुछ गुप्त मंत्रणा हुई थी जो मनुष्यों के लिए मंगलमय थी। एक योजना बनी और एक नीति निर्धारित हुई थी, इतना ही विदित है। उस प्रसंग में आगे क्या हुआ, इसकी कोई जानकारी नहीं मिली। आप त्रिकालज्ञ हैं उस मंगलमय संदर्भ में बताने का अनुग्रह करें कि अब तक

क्या हो चुका और आगे क्या होने वाला है ? ॥ ४-६ ॥

व्याख्या—प्रथम अध्याय में देवर्षि नारद की जिस जिज्ञासा का समाधान भगवान विष्णु ने किया व तदनुसार मानवता के परित्राण हेतु निर्देश दिए थे, उस संबंधी योजना की जानकारी तो त्रिकालज्ञ ऋषियों को थी। परंतु इसे समग्ररूप में किस प्रकार क्रियान्वित किया गया, महर्षि वैशम्पायन अपनी जिज्ञासा इस संदर्भ में प्रकट करते हैं एवं प्रज्ञावतार लीला प्रकरण का विस्तार महाकाल द्वारा योजनाबद्ध रूप से संचालित कार्यपद्धति तथा भविष्य की संभावनाओं के विषय में उनसे अपना मंतव्य बताने का अनुरोध करते हैं। परिस्थिति की समय-समय पर होने वाली समीक्षा का यह एक शाश्वत क्रम है।

देवात्मा स समाकर्ण्य मार्कण्डेयो महामुनिः ।

जिज्ञासां, मुमुदेऽत्यर्थं दिव्यां दृष्टिं समाश्रयत् ॥ ७ ॥

तथा भूतं भविष्यच्च दृष्टवान् ध्यानपूर्वकम् ।

ततो गंभीरमुद्रायां वाण्या संस्कृतयाऽगदत् ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

काययाऽमर वैशम्पायन तं तु महामुने ।

प्रसंगं रोचकं चापि मार्मिकं शृणु ध्यानतः ॥ ९ ॥

टीका—देवात्मा मार्कण्डेय इस जिज्ञासा को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी दिव्यदृष्टि को केंद्रित किया और उससे भूत और भविष्य को ध्यानपूर्वक देखा। वर्तमान में क्या हो रहा है यह भी जाना। तदनुसार गंभीर मुद्रा में सुसंस्कृत वाणी से तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए बोले, हे काया से अमर महामुने वैशम्पायन वह प्रसंग बड़ा ही रोचक और मार्मिक है, तुम ध्यानपूर्वक सुनो ॥ ७-९ ॥

व्याख्या—त्रिकालज्ञ ऋषियों के लिए काल-मन्वन्तर कोई अर्थ नहीं रखते हैं। चौदह मन्वन्तर बताए गए हैं जो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों ही कालों में चलते रहते हैं। इन्हीं के द्वारा एक सहस्र चतुर्युगी वाले कल्प के समय की गणना की जाती है।

भगवतेऽर्पितकायः स तदिच्छा चिंतको मुनिः ।

कर्त्ता तदनुसारं यो देवर्षिर्नारदः स्वकाम् ॥ १० ॥

भक्तिप्रसारिकां भूतकालिकीं कार्यपद्धतिम् ।

परिवर्तितरूपां स व्यधात्कालज्ञ आप्तवाक् ॥ ११ ॥

युगधर्मानुरूपस्य ज्ञानस्यापि चः कर्मणः ।

उत्कृष्टता प्रसारे च विस्तरे निरतोऽभवत् ॥ १२ ॥

टीका—भगवान के लिए समर्पित, उन्हीं की इच्छानुसार सोचने और करने वाले देवर्षि नारद ने अपनी भूतकाल की भक्ति प्रसार वाली कार्यपद्धति बदल दी, चूँकि वह कालज्ञ तथा आप्त हैं। युग धर्म के अनुरूप ज्ञान और कर्म की उत्कृष्टता का प्रसार करने लग गए ॥ १०-१२ ॥

महाप्राज्ञस्य संपन्ना पिप्पलादस्य पञ्चमे ।

१.५२ प्रज्ञोपनिषद्

तत्त्वावधाने पूर्वं तु प्रसङ्गस्तान् महामुने ॥ १३ ॥
 आद्ये प्रज्ञापुराणस्य खंडे पूर्णं न्ययोजयत् ।
 प्रसङ्गस्यास्य वृत्तान्तं वरिष्ठैर्युगपूरुषैः ॥ १४ ॥
 जनं जनं ज्ञापितुं स तत्परोऽभवदेव हि ।
 नूतना चेतना येन दीप्यते तेषु सा ऽनिशम् ॥ १५ ॥
 सृजनस्याथ रूपे हि कर्मचैतन्य एव तत् ।
 प्रज्ञाभियानं तस्यैव प्रयासस्याङ्गतां गतम् ॥ १६ ॥
 दावानल इवाभूत्स प्रचंडो व्यापकस्तथा ।
 झञ्झावातसमानश्च निरंतरमथाप्यभूत् ॥ १७ ॥

टीका—हे मुने महाप्राज्ञ पिप्पलाद के तत्त्वावधान में संपन्न हुए प्रज्ञासत्र के पाँचों प्रसंगों को उनने प्रज्ञा पुराण के प्रथम खंड के रूप में सुनियोजित किया और प्रसंग की जानकारी वरिष्ठ युग पुरुषों के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने में जुट गए, जिससे उनमें नई चेतना का स्फुरण प्रारंभ हो गया। सृजन की कर्म चेतना के रूप में प्रज्ञा अभियान भी उसी प्रयास का अंग बना और दावानल की तरह प्रचंड तथा आँधी-तूफान की तरह व्यापक होता चला गया ॥ १३-१७ ॥

व्याख्या—इस प्रकरण में देवात्मा मार्कण्डेय प्रज्ञा सत्रों की जानकारी महर्षि वैशम्पायन को देते हैं और युग परिवर्तन की पृष्ठभूमि प्रज्ञा अभियान का सृजन चेतना का आभास उन्हें दिलाते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि चेतन जगत में घुमड़ रहे परिवर्तन उसी महाप्राज्ञ भगवत् सत्ता के शक्ति प्रवाह के ही अंग हैं जो आने वाले समय में युगांतरीय भूमिका निभाने जा रही है। सूक्ष्म जगत में चलने वाले प्रवाहों की प्रतिक्रिया से सभी परिचित हैं। लोकप्रवाह में जब अवांछनीयता की विषाक्तता भर जाती है तो पतन-पराभव का संकट उठ खड़ा होता है। उनका निराकरण भी सूक्ष्म जगत में ही होता है। उसका तूफानी प्रभाव सारे वातावरण को झकझोर डालता है।

आँधी आती है तो तिनके भी आकाश में उड़ने लगते हैं। सघन वर्षा की बूँद इतनी शक्तिशाली होती हैं कि मकानों तक को गिरा देती हैं। दावानल की तीव्रता समुद्र को भी उबालकर भाप बनने पर विवश कर देती है इसी प्रकार के प्रवाह में तिनकों-पत्तों की तरह अगणित व्यक्ति बहते चले जाते हैं। आँधी का रुख जिधर होता है उधर ही पेड़ों की डालियाँ और पौधों की कमर झुकी दिखाई देती है। इसे प्रवाह का दबाव कह सकते हैं। दूसरी ओर प्रखर व्यक्तियों की समष्टि चेतना भी इस प्रकार के वातावरण के निर्माण का कारण बनती है। ओजस्वी, मनस्वी, तपस्वी स्तर की प्रतिभाएँ अपनी प्रचंड ऊर्जा के वातावरण को गरम करती हैं और इस गर्मी से परिस्थितियों के प्रवाह में असाधारण मोड़ आते और परिवर्तन होते हैं।

सृजन की प्रेरणा ऐसे ही प्रयासों को जन्म देती आई हैं।

भगवान राम के आह्वान पर देवशक्तियाँ सेतुबंध हेतु नल-नील वानरों के रूप में आईं तो श्रीकृष्ण के साथ मिलकर उन्होंने गोवर्धन उठवाया। बुद्ध ने विवेक धर्म एवं संगठन की शरण लेने हेतु जागृतात्माओं का आह्वान किया और युग की पुकार पर अवांछनीयताओं का विरोध करने भिक्षुओं का विशाल समुदाय उनके साथ हो गया। इसी इतिहास की पुनरावृत्ति अब होने जा रही है। वर्तमान में चल रही गतिविधियाँ उसी समष्टिगत प्रयास का एक अभिन्न अंग हैं।

जागृतात्मभिराधारे तस्मिन्नाकर्ण्य मंत्रणाम् ।

युगस्य, जीवनं येषु श्लथंते भवबंधनम् ॥ १८ ॥

कुर्वतो युगधर्मस्य निर्वाहे निरता मुदम् ।

एकोदीपोह्यनेकांस्तान् दीपानज्वालयत्क्षणात् ॥ १९ ॥

ज्वालां गतः स्फुलिंगश्च बीजं वृक्षत्वमाश्रयत् ।

प्रभाताह्वानमाकर्ण्य तमिस्त्रानिद्रिता जनाः ॥ २० ॥

आयच्छमानाश्चाङ्गानि स्थिता उत्थाय चोन्नताः ।

प्रयाताः कालिकाह्वानं पूर्णं कर्तुं रताः स्मे ॥ २१ ॥

टीका—जागृत आत्माओं ने उस आधार पर युग निमंत्रण सुना और जिनमें जीवन था, वह भव बंधनों को शिथिल करते हुए उस युग धर्म के निर्वाह में प्रसन्नता से जुट गए। एक से अनेकों दीप जले, चिंगारी ज्योति ज्वाला बनी। बीज ने वृक्ष का रूप धारण किया और प्रभात का आह्वान सुनकर तमिस्त्रा के कारण उनींदे पड़े लोग भी अँगड़ाई लेते उठे और तनकर खड़े हो गए चले और समय की माँग पूरी करने में जुट गए ॥ १८-२१ ॥

व्याख्या—जब भी महाकाल का आमंत्रण आता है तो वे ही इस पुकार को सुनकर उस पर कुछ कर दिखाने का संकल्प लेते हैं जो अमरतत्व पर छाए संकीर्ण स्वार्थपरता रूपी कषाय-कल्मषों को हटाते हुए स्वयं को उस महत् प्रयोजन के साथ जोड़ देते हैं। भावनात्मक कृपणता ही है जो समय सामने होते हुए भी व्यक्ति को माया के भवबंधनों में भटकने को लाचार कर देती है।

कोटिशः कपिभल्लूक भूमिकां निरवाहयन् ।

एकैकशश्चमत्कारान् कुर्वतो युगपर्ययम् ॥ २२ ॥

कर्तुं ते सफला जाताः वृत्तिः शुद्धा समन्ततः ।

वैशम्पायन नैवैतत्सर्वं माया-विनिर्मितम् ॥ २३ ॥

टीका—करोड़ों ने रीछ-वानरों की भूमिका निभाई और एक से एक बड़े चमत्कार उत्पन्न करते हुए युग बदलने की भूमिका निभा सकने में सफल हुए। चारों ओर वातावरण शुद्ध हो गया। हे वैशम्पायन यह सब जादू की तरह नहीं हो गया ॥ २२-२३ ॥

व्याख्या—जिस युगांतकारी परिवर्तन की चर्चा ऋषिवर यहाँ कर रहे हैं वह सामान्य नहीं एक असामान्य पुरुषार्थ है।

सत्प्रयोजन हेतु किए गए आदर्शवादी सहयोगी प्रयासों को हमेशा दैवी सहायता मिलती है पर उसमें भी रीछ वानरों जैसी भूमिका निभानी पड़ती है। इतिहास के महान परिवर्तनों में ऐसे ही अगणित पृष्ठ भरे पड़े हैं जिनसे प्रतीत होता है कि अग्रगामी लोगों की तुलना में अवरोधों की संख्या अधिक थी, उनका पुरुषार्थ कम पड़ता था पर उदार श्रमशीलता एवं साहसिकता ने इस या उस प्रकार ऐसी अनुकूलता बनाई कि परिस्थितियाँ साथ देती चली गईं। चमत्कार अपने आप नहीं होते, संपादित किए जाते हैं। युग परिवर्तन जैसा महान कार्य जब सामने हो तो कृष्ण के बाल गोपालों के सत्याग्रह से मध्यकाल की क्रांतियों तथा गाँधी के सत्याग्रह के उदाहरण देख लेना उचित होगा जिनमें असंख्यों को खपना पड़ा। यही स्रष्टा की सदा-सदा से परिवर्तन की प्रक्रिया रही है। सृजन और ध्वंस दोनों का युग साथ चलता है।

प्रयासेऽस्मिन्नसंख्येय - देवमानवपौरुषम्।

प्रचंडमभिनंद्यश्च त्यागः संतोषकारकः ॥ २४ ॥

बलिदानमभूद्यच्च सुकृतं नरजन्मनः।

अनीतेः प्रतिरोधे च संघर्षः सहस्रोदितः ॥ २५ ॥

अज्ञानोन्मूलनं जातं दूरी कर्तुमभावकान्।

अनेकानेकसृज्यानां प्रवृत्तीनां नियोजनम् ॥ २६ ॥

कार्यान्वयनमप्यत्र प्राचलत्तनिरंतरम्।

युगचेतनाग्रदूतास्ते प्रज्ञापुत्रस्वरूपिणः ॥ २७ ॥

टीका—इस प्रयास में असंख्यों देवमानवों को प्रचंड पुरुषार्थ और अभिनंदनीय, तुष्टिप्रद, त्याग, बलिदान करना पड़ा, जो मानव जीवन का उत्तम पुण्य है। अनीति के विरुद्ध संघर्ष उभरा, अज्ञान का उन्मूलन किया गया और अभावों को दूर करने के लिए अनेकानेक सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों का नियोजन तथा कार्यान्वयन निरंतर चल पड़ा। युग चेतना के अग्रदूत प्रज्ञा पुत्रों के रूप में प्रकट हुए ॥ २४-२७ ॥

व्याख्या—महाकाल के आमंत्रण पर समष्टि चेतना के वाहक जिस रूप में प्रकट होते हैं उन्हें ही ऋषि ने यहाँ देवमानव अग्रदूत प्रज्ञापुत्र के नाम से संबोधित कर उनके सत्साहस का वर्णन किया है। जिस किसी ने भी प्रज्ञा का विवेक का संदेश सुना, उसने अपना चिंतन और आचरण उसके अनुरूप ढाला। ऐसे में अपने स्वपरिवार तथा हितैषी कहे जाने वाले परिजनों को असंतुष्ट कर ही महामानव उस श्रेय-सौभाग्य को प्राप्त कर सके हैं जिसे स्तुत्य त्याग एवं बलिदान के रूप में जाना जाता है। ऐसे आदर्शवादी संकीर्ण-स्व परायण परामर्श अनुरोधों आग्रहों को विनयपूर्वक अस्वीकार कर देते हैं तथा प्रचलित ढर्रे से अलग हटकर अपनी राह स्वयं बनाते हैं। अपनी इसी अग्रगामी भूमिका के कारण युगों-युगों तक के लिए इतिहास में उनका नाम अमर हो जाता

है।

व्रतिनो नवनिर्माण स्वनिर्माणस्य चाभवन्।

युगदेवाङ्घ्रिषु श्रद्धाञ्जलीः सङ्कल्पजा ददुः ॥ २८ ॥

पञ्चमुख्यग्निवेद्यास्ते पुरोऽदुर्देवदक्षिणाः।

आत्मनिर्मितयेऽगृहणन् साधनासेवयोस्तथा ॥ २९ ॥

स्वाध्यायस्य व्रतं सर्वे संयमस्यापि तददृढम्।

परिवारं स्वं स्वमेवाथ पञ्चशील प्रवृत्तिभिः ॥ ३० ॥

अभ्यस्तं कर्तुमेवैते निश्चयं मुदिता व्यधुः।

इत्थमात्मविनिर्माणः परिवारविनिर्मितिः ॥ ३१ ॥

शृङ्खलाबद्धतो जाता व्यरमन्तो क्षणं क्वचित्।

तेन संस्कारयुक्ता च देवमानवनिर्मितिः ॥ ३२ ॥

टीका—उन (प्रज्ञापुत्रों) ने आत्मनिर्माण और नव निर्माण के लिए व्रत ग्रहण किए और संकल्पों की श्रद्धांजलियाँ युगदेवता के चरणों पर अर्पित कीं। पंचमुखी अग्निवेदिका के सम्मुख उनसे देवदक्षिणा समर्पित की और आत्मनिर्माण के लिए साधना, स्वाध्याय, संयम, सेवा के दृढ़ व्रत लिए और अपने-अपने परिवारों को पंचशील की सत्प्रवृत्तियों से अभ्यस्त करने का प्रसन्नता से निश्चय किया। इस प्रकार आत्मनिर्माण और परिवार निर्माण की शृङ्खला चल पड़ी जो क्षण भर भी नहीं रुकी और उससे देवमानवों का निर्माण चल पड़ा ॥ २८-३२ ॥

टीका—विश्वनिर्माण व युगांतरीय परिवर्तन की प्रक्रिया आत्म क्षेत्र से आरंभ होती है। आत्मनिर्माण कर सकने वाले पुरुषार्थी ही नवसृजन हेतु व्रतशील हो पाते हैं। भावावेश में कूद पड़ने वाले सामयिक श्रेय भले ही पा लें, स्वयं को धन्य नहीं बना पाते।

हमेशा महामानव अपने तथा अपने परिवार में सत्प्रवृत्तियों का समावेश करके ही अपनी अग्रगामी भूमिका सार्थक करते आए हैं। बिना त्याग किए कुसंस्कारिता से पीछा छुड़ाए आत्मनिर्माण संभव नहीं और इस साधना के बिना देव मानव बनना संभव नहीं। पंचमुखी अग्नि सतत यही प्रेरणा देती चली आई है। व्यक्ति वही अभिनंदनीय है जो सद्गुणों को अपने अंदर समाविष्ट करने के लिए कड़ा संघर्ष करता है और व्रतशील जीवन जीने के लिए कृत संकल्प होता है। अग्नि के समक्ष ली गई ऐसी प्रतिज्ञा को ही देव दक्षिणा नाम दिया गया है।

जाता, प्रखरता तेषां सत्प्रवृत्त्युदयं व्यधात्।

दुष्प्रवृत्तिक्रमो भग्नस्तासां शेषत्व हेतवे ॥ ३३ ॥

कश्चिन्नावसरो भूय आगमिष्यति निश्चितम्।

अगृहणन् युगस्त्रष्टार औदार्यमंशमर्पितुम्।

समयं दातुमेवापि संचिता शक्तिरदभुता।

दुर्गावतरणं यतु सामर्थ्यमद्भुतं ददौ ॥ ३५ ॥

१.५४ प्रज्ञोपनिषद्

इमां शक्तिं समाश्रित्य दूरीभूतं महत्तमः ।

देवतत्वान्यत्नं प्रापुर्बलमासुरमत्यगात् ॥ ३६ ॥

टीका—उन (प्रज्ञापुत्रो) की प्रखरता से सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ती चली गईं और अब उन दुष्प्रवृत्तियों के शेष रहने का कोई अवसर नहीं आया। युग सृजेताओं ने समयदान, अंशदान की उदारता अपनाई और उस अद्भुत सामर्थ्य को जन्म दिया, इस शक्ति के सहारे अंधकार मिटा। देवतत्वों को बल मिला और असुरता निरस्त होती चली गई ॥ ३३-३६ ॥

व्याख्या—प्रज्ञावतार जन-जन में यह चेतना जगा रहा है कि उन्हें अपने जीवन क्रम में आदर्शवादिता को अधिकाधिक मात्रा में धारण करना होगा। उच्चस्तरीय भाव संवेदनाएँ मूर्च्छित अंतःकरण में नहीं जन्म लेतीं। प्रज्ञावतार की प्रेरणा व प्रभाव से लोग अपने भीतर नई उमंगें उठती अनुभव कर रहे हैं और मस्तिष्क में उत्कृष्टता के प्रति रुचि उत्पन्न हो रही है। युग परिवर्तन के बीजांकुर प्रखर प्राणवान सुसंस्कारी जाग्रत आत्माओं में सत्प्रवृत्तियों के उफन पड़ने व अवरोध बनी दुष्प्रवृत्तियों के समूल नष्ट होने के रूप में फूट रहे हैं। ऐसे सेनापतियों के तत्पर होने पर ही सैनिक युद्ध मोरचे की ओर बढ़ती हैं। ऐसों की उदारता औरों के लिए प्रेरणा का प्रकाश पुंज बन जाती है।

प्रवृत्ति बदलते ही सब कुछ बदल जाता है। यदि आंतरिक प्रवृत्ति नहीं बदली तो बहिरंग कभी भी नहीं बदल सकता। मूल प्रवृत्ति उभरकर आएगी ही।

सुप्रभातमिदं प्रज्ञा युगस्याभून्महामुने ।

जागृतात्मांशदानं तदृषिरक्तमिवाऽभवत् ॥ ३७ ॥

समर्थं संस्कृतेर्नव्यसीतायाः जन्मनः कृते ।

सत्प्रवृत्तीरसंख्येया इदं सामर्थ्यमासृजत् ॥ ३८ ॥

पोषयामास ताः सर्वा वर्षा इव सुमंगला ।

प्रक्रियैषात्मनिर्माण - युगनिर्माण - संयुता ॥ ३९ ॥

विख्यातिमगमहेवदक्षिणा नामतो भुवि ।

प्रस्तुतं वह्निर्साक्षित्वं श्रद्धाञ्जलय एतकाः ॥ ४० ॥

दातृभ्यः सौभगस्यासन् श्रेयसां कारणानि च ।

गरिम्णो मानवस्याभूत् पुनर्जीर्विनकस्य तु ॥ ४१ ॥

निमित्तं कारणं धन्यं पीयूष - परिपोषणम् ।

प्रक्रियैषा दधौ रूपं युगशक्तेः सुशोभना ॥ ४२ ॥

परिवर्तनकस्याभूनिमित्तं कारणं त्वियम् ।

वर्तमाने चलत्येतद् भविष्यदुज्ज्वलं मतम् ॥ ४३ ॥

टीका—महामुने यह प्रज्ञायुग का सुप्रभात सिद्ध हुआ। जागृत आत्माओं का अंशदान ऋषि रक्त की तरह संस्कृति की अभिनव सीता को जन्म देने में समर्थ हुआ। इस सामर्थ्य ने अगणित सत्प्रवृत्तियों को सृजा और उन्हें परिपोषण प्रदान किया जो मांगलिक वर्षा के समान सिद्ध हुई। अग्नि की

साक्षी प्रस्तुत की गई। ये श्रद्धांजलियाँ दाताओं के लिए श्रेय सौभाग्य की कारण बनीं और मानवी गरिमा के पुनर्जीवन का निमित्त कारण बनीं जो धन्य एवं अमृत पोषण सिद्ध हुआ। इस प्रक्रिया ने युग शक्ति का रूप धारण किया और परिवर्तन का निमित्त कारण बनीं। वर्तमान में यही सब चल रहा है। उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित है ॥ ३७-४३ ॥

व्याख्या—प्रज्ञायुग में जागृतात्माओं ने वही प्रक्रिया अपनाई है जो संघशक्ति उपार्जित करने के लिए असुरता निवारण हेतु ऋषियों द्वारा रक्त अंश रूप में एकत्र कर सीता जन्म की भूमिका तथा रावण संहार हेतु राम भगवान के अवतरण का मूल प्रयोजन बनी थी। यह उदारमना देववृत्ति जब उभरकर आती है उसके सत्परिणाम अपार होते हैं। निष्ठावानों का श्रम सीकर ही शक्ति प्रदाता होता है। विभूतिवानों के पास देने के लिए प्रतिभा, कौशल, साधन सब कुछ हैं पर महत्ता तभी है जब देने की प्रवृत्ति अंदर से उभरे। बूँद-बूँद से मिलकर समुद्र बनता है। आज महाकाल हर जागृतात्मा की परख निष्ठा की कसौटी इसी को मानते हैं किसने अपने को कितना उदार बनाया व सत्प्रवृत्तियों हेतु कितना समर्पण किया।

यत्रार्जुन इवास्त्येव कर्मवीरस्तथा च सः ।

सूत्रसंचालकोऽप्यत्र भगवानिव भासते ॥ ४४ ॥

तत्रासाफल्य-हेतुर्न कश्चिदस्ति मनागपि ।

प्रसङ्गेऽस्मिन् महालाभस्तैर्नैः प्राप्यते भृशम् ॥ ४५ ॥

भगवतः सहगा ये तु भूत्वा तेषां सुमंगले ।

युगपर्ययविधौ युक्ता भावुकास्तु निरंतरम् ॥ ४६ ॥

टीका—जहाँ अर्जुन जैसे कर्मवीर और भगवान जैसे सूत्र संचालक हों वहाँ असफलता का कोई कारण नहीं। इस प्रसंग में सबसे अधिक लाभ उन्हें मिलना है जो भगवान के सहचर बनकर उनकी मंगलमय युग परिवर्तन प्रक्रिया कार्यान्वित करने में भावना पूर्वक निरंतर जुटे हुए हैं ॥ ४४-४६ ॥

व्याख्या—अवतार की योजना व सूत्र संचालन इतना सुनियोजित होता है कि उसमें कहीं किसी प्रकार का असमंजस-असफल होने का ऊहापोह मन में नहीं होना चाहिए। भगवान महाकाल के साथ साझेदारी जिस-जिस ने की है वह युगांतरीय परिवर्तनों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाकर अपने जीवन को सार्थक बना सका है। तथ्य यही है कि महानता रूपी अवसर सामने होने पर उससे लाभ लेने एवं प्रभु के सृष्टि के नव सृजन कार्य में सहभागी बनने में व्यक्ति कितना साहस व उदारता दिखाता है।

वस्तुतः महानता आग के समान है, उसके संपर्क में जो भी आता है गरिमायुक्त एवं तद्रूप होता चला जाता है। पृथ्वी का वैभव सूर्य के अनुदान से मिला है। यदि सूर्य का तापमान मात्र तीस डिग्री घट जाए तो समूची धरती चालीस फुट बर्फ

से ढक जाएगी। इसी प्रकार तीस डिग्री तापमान बढ़ जाए तो यहाँ भी बुध ग्रह जैसी भयानक गर्मी तपेगी और वृक्ष वनस्पतियों से लेकर जल, थल और नभचर प्राणियों में से किसी का भी जीवित रह सकना संभव नहीं होगा। इसे पृथ्वी का सौभाग्य ही कहना चाहिए कि एक उपयुक्त स्तर के स्नेह सूत्र में सूर्य के साथ बँधी और आदान-प्रदान का उपयोगी सिलसिला चल पड़ा। मछलियाँ जलराशि के सहयोग बिना अपने बलबूते किस प्रकार जीवित रह सकती हैं? उनकी संरचना अति महत्त्वपूर्ण होते हुए भी यह संभव नहीं कि अपने पैरों पर खड़ी रह सकें और जलराशि की उपेक्षा करके अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकें।

महानता के साथ संपर्क साधना, उसके सहयोग का सुयोग पा लेना भी कई बार अप्रत्याशित सौभाग्य बनकर सामने आता है। यों वैसे अवसर सदा सर्वदा हर किसी के लिए उपलब्ध नहीं रहते।

रामचरित्र के साथ जुड़ जाने पर कितने ही सामान्य स्तर के प्राणियों ने सामान्य क्रियाकलापों के सहारे असामान्य श्रेय पाया। इस तथ्य को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। बंदर स्वभावतः इधर-उधर लकड़ी पत्थर फेंकते रहते हैं, समुद्र पर पुल बनाने में प्रायः इतनी ही कूद-फाँद उन्हें करनी पड़ी होगी, पर उसे सुयोग ही कहना चाहिए कि उतनी छोटी-सी उदार श्रमशीलता को ऐतिहासिक बना दिया और कथावाचक उसकी भावभरी चर्चा करते-करते अघाते नहीं, ऐसे आदर्शवादी सहयोगों की सफलता में कर्त्ताओं का पुरुषार्थ ही नहीं दैवी सहायता भी काम करती है और श्रेय उन अग्रगामी साहसियों के पल्ले बँध जाता है। नल-नील ने समुद्र पर पुल बनाया और पत्थर पानी पर तैरने लगे। इस प्रकार के घटनाक्रम सामान्य स्थिति में देखे नहीं जाते। दैवी प्रयोजनों में दैवी सहायता की असाधारण मात्रा उपलब्ध होती है।

कृष्ण चरित्र पर दृष्टिपात करने से भी यह तथ्य असाधारण रूप से उभरकर आगे आता है। गोपियों का छाछ पिलाना, थोड़ी सी हँसी ठिठोली कर देना, ग्वालबालों का लाठी सहारा जैसे कृत्य ऐसे नहीं हैं जिन्हें दैनिक जीवन में सर्वत्र घटित होते रहने वाले सामान्य उपक्रमों में भिन्न समझा जा सके। इतने पर भी वे सहयोग पुराण उपाख्यानों में बहुत बार दुहराए सराहे जाते रहते हैं, उनमें अनेकों योद्धा लड़ते और हारते-जीतते रहते हैं, पर अर्जुन भीम जैसों को जो श्रेय मिला उनकी गरिमा असामान्य हो गई। अर्जुन भीम वे ही थे, जिन्हें वनवास के समय पेट भरने के लिए और जान बचाने के लिए बहुरूपिए बनकर दिन गुजारने पड़े थे। द्रौपदी को निर्वसन होते आँखों से देखने वाले पांडव यदि वस्तुतः महाभारत जीत सकने जैसी समर्थता के धनी रहे होते तो न तो दुर्योधन, दुःशासन वैसी

धृष्टता करते और न पांडव ही उसे सहन कर पाते। कहना न होगा कि पांडवों की विजय श्री में उनकी वह बुद्धिमत्ता ही मूर्खन्य मानी जाएगी जिसमें उनसे कृष्ण को अपना और अपने को कृष्ण का बनाकर भगवान से छोड़े हकवाने जैसे छोटे काम कराने को विवश कर दिया था। यदि वे वैसा न कर पाते और अपने बलबूते जीवन गुजारते तो स्थिति सर्वथा भिन्न होती और यायावरों की तरह जैसे-तैसे जिंदगी व्यतीत करते।

बुद्ध के साथ जुड़ने का साहस न कर पाते तो हर्षवर्द्धन, अशोक, आनंद, राहुल, कुमारजीव, संघमित्रा, अंबपाली आदि की जीवनचर्या कितनी नगण्य रह गई होती इसका अनुमान लगा सकना किसी के लिए भी कठिन नहीं होना चाहिए। गांधी के साथ यदि विनोबा, राजगोपालाचार्य, नेहरू, पटेल, राजेंद्र बाबू आदि न घुले होते अपना पृथक्-पृथक् वर्चस्व बनाकर चले होते तो वह स्थिति बन नहीं पाती जो बन सकी। नेहरू और लालबहादुर शास्त्री की घनिष्टता प्रसिद्ध है। यदि उस सघनता को ताक पर रख दें और अपने-अपने बलबूते उठने-बैठने की बात सोचें तो फिर परिणाम भी कुछ दूसरे ही स्तर के होने की बात सामने आ खड़ी होगी।

चाणक्य के साथ चंद्रगुप्त, समर्थ के साथ शिवजी, परमहंस के साथ विवेकानंद की सघनता दोनों पक्षों के लिए कितनी संतोषजनक परिणाम प्रस्तुत कर सकी इसे कौन नहीं जानता।

दिनं नहि सुदूरं तत् यत्र काल - विपर्ययः।

चिन्तनं स्याच्चरित्रं च नराणां परिवर्तितम् ॥ ४७ ॥

उत्कृष्टता सुसंस्कारैः संस्कृतास्ते नरा ध्रुवम्।

विमुखाश्चनिकृष्टत्वात् स्वार्थसंकीर्णताग्लपेत् ॥ ४८ ॥

वर्धिष्यन्तेऽञ्जनसावश्यं सहसा सत्प्रवृत्तयः।

उदारसहयोगेन हर्षोल्लासोदयो भवेत् ॥ ४९ ॥

आगामि दिवसेष्वेवं नापराधा न विग्रहाः।

द्रक्ष्यन्ते, सीमितेष्वेव साधनेषु प्रसन्नताः ॥ ५० ॥

तेष्वसीमसुखस्याथ शांतेश्चापि महामुने।

उपलब्धेर्भविष्यन्ति दृश्यान्वक्षिचराण्यलम् ॥ ५१ ॥

विषमताविनाशः स्यादेकतोत्पत्तिरेव च।

समस्ता मानवाः स्थास्यन्त्येकराष्ट्रता इव ॥ ५२ ॥

एकां भाषां वदिष्यन्ति विश्वधर्मं तथा च ते।

संस्कृतिं मानवीयां च स्वीकरिष्यन्ति प्रेमतः ॥ ५३ ॥

द्रक्ष्यन्ते मानवाः देवरूपिणो जगतीतले।

कोणे-कोणे सुखस्याथ शांतेः स्वर्गा वृतिर्भवेत् ॥ ५४ ॥

प्रज्ञायुगो भूतकालाच्छ्रेष्ठः सत्ययुगादपि।

ज्ञास्यते श्रेय आधास्यन् व्रजिष्यति वरिष्ठताम् ॥ ५५ ॥

टीका—वह दिन दूर नहीं जब समय बदला होगा। मनुष्यों के चिंतन चरित्र में भारी हेर-फेर उत्पन्न होगा। वे निकृष्टता से विमुख होकर उत्कृष्टता के ढाँचे में ढलेंगे। संकीर्ण स्वार्थपरता

१.५६ प्रज्ञोपनिषद्

घटेगी तो सत्प्रवृत्तियाँ अनायास ही बढ़ती चली जाएँगी। उदार सहयोग बढ़ने पर सर्वत्र हर्ष उल्लास छाता ही है। अगले दिनों न कहीं अपराध दृष्टिगोचर होंगे न विग्रह, सीमित साधनों में प्रसन्नता होगी। तथा उन्हीं में असीम सुख-शांति उपलब्ध करने के स्वर्गीय दृश्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगेंगे। विषमता मिटेगी और एकता उत्पन्न होगी। समस्त मनुष्य एक राष्ट्र बनाकर रहेंगे, एक भाषा बोलेंगे। विश्व धर्म और मानवी संस्कृति को सभी प्रेमपूर्वक स्वीकार करेंगे। मनुष्य देवता जैसे दीखने लगेंगे और धरती के कोने-कोने में सुख-शांति का स्वर्गीय वातावरण बन जाएगा। प्रज्ञायुग को भूतकाल के सतयुग से भी अधिक श्रेष्ठ समझा जाएगा और इसे ही वरिष्ठता का श्रेय प्राप्त होगा ॥ ४७-५५ ॥

व्याख्या—प्रज्ञायुग के भावी स्वरूप पर त्रिकालज्ञ ऋषि अपना पूर्व कथन व्यक्त करते हुए उसे श्रेष्ठता-आदर्शों से भरा युग बताते हैं। आज की घुमड़ती हुई विभीषिका की घटाएँ तथा उन्हीं के साथ चल रही सृजन की गतिविधियों को दृष्टिगत रख अन्यान्य दृष्टा मनीषियों, अतीन्द्रिय चेतना संपन्न व्यक्तियों ने भी इसी प्रकार के मंतव्य प्रकट किए हैं। यह समय विनाश का नहीं, नव निर्माण का है। बीज अंकुर रूप में जन्म ले चुका है, प्रज्ञावतार का आवेश असंख्यों विश्व वासियों को अपनी प्रेरणा से प्रेरित कर रहा है, उसे देखकर ही भविष्य के प्रति आशा बँधने लगती तथा उल्लास की उमँगें उठने लगती हैं। यह इस बार का ही नहीं, हर बार का प्रसंग है कि संव्याप्त भ्रष्टता-निकृष्टता निवारण हेतु अवतार प्रक्रिया ने सृजन की प्रक्रिया को अपने हाथों संपन्न किया है। वर्तमान में भी जो भावनात्मक प्रवाह चल रहा है उसका उद्देश्य एक ही है, हजारों वर्षों की कलंक कालिका को धोकर मानवता के अतीत कालीन उज्ज्वल गौरव की पुनः स्थापना करना।

वैशम्पायन संवादः विष्णुनारदयोस्तु यः ।

ततः प्रज्ञापुराणस्य विस्तरस्य तथैव च ॥ ५६ ॥

प्रज्ञाभियानकस्यापि विश्वगो विस्तरस्तु यः ।

परिचयस्तस्य संक्षिप्तो बोधितोऽयं मयाऽधुना ॥ ५७ ॥

दिव्यदृष्ट्या स्वरूपं च भविष्यत्कालिकं पुनः ।

स्पष्टमेव महाभाग करामलकवद् ध्रुवम् ॥ ५८ ॥

प्रज्ञावतारलीलेयं प्रखरा प्रोज्ज्वला मता ।

निरस्ताः पूर्णतो यत्र भयानकविभीषिकाः ॥ ५९ ॥

स्वर्गावतरणं भूमौ यदास्ते परिवर्तनम् ।

तुलनस्यैतत्तु द्रक्ष्यति ये ते स्युरथ विस्मिताः ॥ ६० ॥

प्रज्ञायुगः सर्वश्रेष्ठो भविष्यति युगो भुवि ।

स्थापका भुवि ये तस्य श्लाघ्याः प्रज्ञासुतास्तु ते ॥ ६१ ॥

तेषां भगीरथायास-भूमिकायास्तु वर्णनम् ।

उत्साहवर्धकं वंश्याः करिष्यन्ति युगे युगे ॥ ६२ ॥

श्रोतारो युगस्त्रष्टृणां श्लाघ्यन्तस्तु भाग्यकम् ।

हन्त तत्राभविष्यामाभवाम भूरिभाग्यकाः ॥ ६३ ॥

टीका—हे वैशम्पायन विष्णु नारद संवाद से लेकर प्रज्ञापुराण के विस्तार और प्रज्ञा अभियान के विश्वव्यापी विस्तार का संक्षेप परिचय मैंने कराया है। हे महाभाग दिव्य दृष्टि से भविष्य का स्वरूप भी हाथ में रखे आँवले की तरह स्पष्ट है। पिछले सभी अवतारों की तुलना में प्रज्ञावतार की लीला कहीं अधिक प्रखर प्रोज्ज्वल मानी जाएगी। ऐसी जिसमें भयानक विभीषिकाओं को निरस्त कर दिया गया है। उस स्थान पर स्वर्ग के धरती पर उतारने जैसे परिवर्तन पर जो भी तुलनात्मक दृष्टि डालेंगे, वे आश्चर्यचकित हुए बिना न रहेंगे। प्रज्ञा युग सर्वश्रेष्ठ युग होगा। उसे धरती पर उतारने वाले प्रज्ञापुत्र श्लाघ्य हैं। उनकी भागीरथ जैसी भूमिका का उत्साहवर्द्धक वर्णन अगली पीढ़ियों के लोग युगों-युगों तक करते रहेंगे। सुनने वाले इन युग सृजेताओं के भाग्य की सराहना करते हुए सोचेंगे, काश हम उन दिनों रहे और कार्यरत बने होते तो कितने सौभाग्यवान कहलाते ॥ ५६-६३ ॥

व्याख्या—मध्यकाल का इतिहास सबके सामने है। जिस प्रकार वर्तमान युग की गतिविधियाँ चल रही हैं और चारों ओर आस्था संकट के बादल घुमड़ते दिखाई देते हैं, यह भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। परिस्थितियाँ ऐसी विकट हैं कि बिना ध्वंश के नवसृजन अब संभव नहीं। प्रातः वेला में सूर्योदय के पूर्व अंधतमिस्त्रा और गहन हो जाती है। ऊषा की लालिमा छाते ही अंधकार मिटने लगता है व प्रातः का संकेत देते पक्षी चहचहाने लगते हैं। यही अवसर अवतार के प्रकटीकरण का है। प्रबुद्ध आत्माएँ अपने अंदर इतना प्रकाश धारण किए रहती हैं कि उपयुक्त अवसर को पहचानें और रीछ-वानर ग्वालों-भिक्षुकों की तरह अवतार के सहयोगी बनें, दैवी निर्देशों के अनुरूप अपनी गतिविधियाँ मोड़ दें। गीताकार कृष्ण अर्जुन को महाभारत में गांडीव उठाने के लिए ललकारते हैं। स्वयं पाँचजन्य बजाकर युद्ध घोषणा करते हैं। यह एक ऐतिहासिक प्रसंग नहीं वरन् हर आत्मवादी को अनिवार्य रूप से अपनाने के लिए प्रस्तुत ईश्वरीय मार्गदर्शन है जो इस महाभारत में मोहग्रस्त हो पीछे रह जाते हैं, वे समय बीत जाने पर पछताते हैं व सोचते हैं कि श्रेय सौभाग्य का समय समीप होते हुए भी हम क्यों नहीं इस अवसर का सदुपयोग कर पाए?

स्वतंत्रता संग्राम में जिन्होंने भावभरी भूमिका निभाई, वे पेंशन पाने, शासन में उच्च पद पाने के श्रेयाधिकारी बने थे। वह समय निकल जाने के उपरांत कोई उस सौभाग्य को पाना चाहे तो यही कहना पड़ेगा कि समय निकल गया। उन्हीं

लोग उन दिनों असमंजस की स्थिति में पड़े रहने पर मात्र पश्चाताप ही कर सकते हैं। गाँधी की डाँड़ी यात्रा एवं धरसना के नमक सत्याग्रह का स्मरण सदा ही किया जाता रहेगा। बाद में तो कितनों ने ही नमक बनाया और कारागार भुगता था।

यह विचित्र लीला संदोह हर अवतार के साथ देखने में आया है कि उनके रहते कोई उन्हें पहचान नहीं पाता। अवतार की सृजन प्रक्रिया प्रज्ञाचक्षुओं से ही देखी जा सकती है, चर्म चक्षुओं से नहीं। निवेदिता ने विवेकानंद को पहचाना, व पटेल, नेहरू ने गाँधी को। आनंद, अशोक, हर्षवर्द्धन ने बुद्ध के विचार क्रांति अभियान को पहचाना और समय रहते उसके सहयोगी बने। बाद में जब वे आकर चले गए तो अवसर चूकने वाले ऐसे असंख्यों थे जो उन दिनों भी उनके समकालीन थे पर स्वयं को धन्य न बना पाए।

इन दिनों महाकाल ने आग्रहपूर्वक प्राणवानों को सहयोग देने के लिए बुलाया है। वस्तुतः यह श्रेयाधिकारी बनने का सौभाग्य संदेश भर है। भगवान के काम, समय के उपक्रम एवं दिव्य शक्तियाँ अपनी अदृश्य क्षमता के आधार पर स्वयं ही संपन्न कर लेती हैं। रीछ-वानर रूठ-मटककर बैठ जाते तो भी सीता वापसी और लंका की दुर्गति निश्चित थी। ऐसे अवसरों का सबसे बड़ा लाभ वे अग्रगामी उठाते हैं जो संकीर्ण स्वार्थपरता को छोड़कर समय की माँग पूरी करने के लिए बिना समय गँवाए अग्रिम मोरचे पर जा खड़े होते हैं।

युग संधि की प्रस्तुत प्रभात वेला को ठीक ऐसा ही मुहूर्त समझा जाना चाहिए, जिसमें साहसी, सदाशयी छोटे-छोटे कदम बढ़ाने पर भी अत्यधिक श्रेय संचित कर सकने वाले दूरदर्शियों में गिने जाएँगे।

मार्कण्डेय उवाच

तावती तात श्रोतव्या कथा यस्यां तु चिंतनम्।

मननं संभवेच्चापि समाप्तव्यः प्रसङ्गकः ॥ ६४ ॥

संध्यावंदनहेतोश्च गच्छामो वयमद्य तु।

भविष्यत्यवसरश्चेज्ज्ञानचर्चा भविष्यति ॥ ६५ ॥

टीका—मार्कण्डेय जी ने वैशम्पायन से कहा तात कथा उतनी ही सुननी चाहिए जिस पर चिंतन-मनन हो सके। आज का प्रसंग समाप्त किया जाए। हम लोग संध्या वंदन के लिए चलें। अवसर हुआ तो भविष्य में फिर ज्ञान चर्चा करेंगे ॥ ६४-६५ ॥

व्याख्या—ज्ञान को पहचानने की प्रक्रिया ही चिंतन-मनन है। ज्ञान की आभा तब वाणी चेहरे पर परलक्षित होती है जब वह रक्त में मिलता है। किसी भी वस्तु को यदि ठीक से आत्मसात करना हो तो उसकी घुटाई जरूरी है। मार्कण्डेय जी ने युगांतरीय चेतना के लीला संदोह प्रकरण की कथा का वैशम्पायन जी के श्रीमुख से श्रवण कर उस पर चिंतन व आगे की संभावित परिवर्तन प्रक्रिया के विषय में मनन की चर्चा कर प्रस्तुत प्रसंग समाप्त करते हैं।

॥ इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः
श्री मार्कण्डेय-वैशम्पायन ऋषि-संवादे युगांतरीय चेतना लीला संदोह इति प्रकरणो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥